E-ISSN: 2664-603X
P-ISSN: 2664-6021
IJPSG 2022; 4(1): 197-200
www.journalofpoliticalscience.com
Received: 05-01-2022
Accepted: 07-02-2022

रीता रानी रिहालिया
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,
शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत

डॉ० महेंद्र सिंह यादव
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान
विभाग, संध्यकालीन अध्ययन केंद्र,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,
शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
रीता रानी रिहालिया
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,
शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत

महात्मा गाँधी के राजनीतिक विचार

रीता रानी रिहालिया एवं डॉ० महेंद्र सिंह यादव

प्रस्तावना

गांधीजी सन्त महात्मा तो थे लेकिन वे एक राजनीतिज्ञ भी थे। अपने इन दोनों स्वरूपों का तालमेल बिठाने के लिए दोनों को ही जीवन के लिए अनिवार्य मानते थे। गांधीजी की मान्यता थी कि धर्म मनुष्य के जीवन को धुरी है। ऐसे ही विचार उन्होंने राजनीति के सम्बन्ध में प्रकट करते हुए यह माना कि राजनीति अपनी तमाम बुराइयों के बावजूद मनुष्य के लिए अनिवार्य है। गाँधीजी धर्म रहित तथा छल- छद्म से भरपूर राजनीति को पसंद नहीं करते थे। उन्होंने अनुभव किया कि इस प्रकार की कुटिल राजनीति जो नैतिकता विहीन हो किसी भी दशा में उचित नहीं है। राजनीति को नैतिकता और मानव कल्याण का साधन बनना चाहिये। उन्होंने सत्य, अहिंसा और सेवा पर आधारित राजनैतिक दर्शन का महल खड़ा किया। उन्होंने राजनीति शास्त्र पर ग्रन्थ नहीं लिखा। वरन् अपने राष्ट्रीय संग्राम के दौरान कदम-कदम पर जो राजनैतिक व्यवहार किया, वहीं उनकी राजनीति का दर्शन था।

महात्मा गाँधी एक पैगम्बर भी थे और राजनीतिज्ञ भी। महात्मा गाँधी एक धार्मिक व्यक्ति थे। वे राजनीति में धर्म की प्रतिष्ठा चाहते थे। इसी भावना को साकार करने के लिए उन्होंने राजनीति में प्रवेश किया। महात्मा गांधी संत, महात्मा और समाज सुधारक पहले थे और तत्पश्चात् राजनीतिक दार्शनिक। महात्मा गाँधी के विचारों की यह सबसे महत्वपूर्ण देन है कि उन्होंने राजनीति और धर्म के बीच अटूट सम्बन्ध की स्थापना की। गांधीजी का मानना था कि राजनीति का आधार धर्म होना चाहिए। उन्होंने उपयोगिता के इस प्रसिद्ध सिद्धान्त को कभी स्वीकार नहीं किया कि धर्म व्यक्ति का निजी मामला है और इसलिए उसकी राजनीति से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए गांधीजी ने राजनीति को ऊपर उठाकर निःस्वार्थ लोकसेवा तथा नैतिकता के स्वर पर रखा था।

गाँधीजी के राजनैतिक दर्शन के सम्बन्ध में विश्वनाथ प्रसाद वर्मा ने अपनी पुस्तक 'आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन' में निम्नांकित विचार प्रकट किये हैं, "गाँधीजी का आग्रह था कि राजनीति का आधार धर्म होना चाहिये। उन्होंने उपयोगिता के इस प्रसिद्ध सिद्धान्त को कभी स्वीकार नहीं किया कि धर्म व्यक्ति का निजी मामला है, इसलिये उसकी राजनीति से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।"[1] अतः राजनीतिक विकेंद्रीकरण गाँधीजी के विचारों का केंद्रबिंदु था। गाँधीजी कभी भी साम्यवाद के केंद्रीकरण विचार के समर्थक नहीं रहे। महात्मा गांधी एक प्रकार से अराजकतावादी दार्शनिक थे। वे राज्य की बढ़ती हुई शक्तियों को शंका की दृष्टि से देखते थे।

गाँधीजी का विचार था कि यद्यपि देखने में ऐसा लगता है कि राज्य कानून द्वारा शोषण को कम करने में जनहित कर रहा है, परंतु यह मनुष्यमात्र को सबसे बड़ी हानि पहुंचाता है, क्योंकि इसके द्वारा व्यक्तिगत विशेषता का नाश होता है जो सभी प्रकार की उन्नति की जड़ है। महात्मा गाँधी स्वायत्तशासी गणराज्यों के हिमायती थे जिसमें प्रत्येक गणराज्य एक-दूसरे से स्वतंत्र और पृथक इकाई है। महात्मा गाँधी ऐसे आदर्श समाज की रचना करना चाहते थे जिसमें आत्मनिर्भर ग्राम हों और जो स्वेच्छापूर्वक सहयोग के आधार पर शांतिपूर्वक और गौरवपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें। उनके अनुसार, "प्रत्येक ग्राम एक गणराज्य हो जिसमें उसकी एक पंचायत हो। पंचायत के पास अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति एवं रक्षा के लिए समस्त साधन उपलब्ध हों।"[2] एक अन्य स्थान पर उनके अनुसार, "ये गणराज्य इतने आत्मनिर्भर होंगे कि वे संपूर्ण दुनिया से अपनी रक्षा स्वयं कर सकेंगे। ग्रामीण गणराज्य स्वायत्तशासी इकाई के रूप में एक ढीले-ढाले संघ का निर्माण करेंगे। संघ की शक्ति का आधार नैतिकता होगी न कि हिंसात्मक शक्ति।"[3] अतः महात्मा गाँधी साध्य-साधन की एकरूपता में विश्वास करते थे। उनकी मान्यता थी कि साधन बीज है और साध्य वृक्ष। जो संबंध बीज और वृक्ष में है, वही संबंध साधन और साध्य में है। शैतान की उपासना करके कोई व्यक्ति ईश्वर भजन का फल नहीं पा सकता। उन्होंने कहा कि, "साध्य का नैतिक होना ही पर्याप्त नहीं है, साधन को भी नैतिक होना चाहिए।"[4] अतः उपरोक्त के आधार पर कहा जा सकता है कि गांधी ने जो अपने चिंतन और व्यवहार की जो व्याख्याएं दी उन सब में गांधी के राजनीतिक दर्शन का ज्ञान होता है

गांधीजी की सबसे बड़ी देन राजनीति का आध्यात्मीकरण है उन्होंने राजनीति को छल-छद्म और उठा-पटक तथा हिंसा से ऊंचा उठाकर निःस्वार्थ लोक सेवा और नैतिकता का स्तर प्रदान किया। उन्होंने कहा कि, "यदि आज मैं राजनीति में हिस्सा लेता हूं तो उसका एकमात्र कारण यही है कि राजनीति वर्तमान समय में हमें साँप की तरह चारों ओर से लपेटे हुए है। जिसके चंगुल से हम कितनी भी कोशिश क्यों नहीं करें, नहीं निकल सकते। इसीलिये मैं उस साँप से द्वन्द्व युद्ध करना चाहता हूँ। इसी कारण मैं राजनीति में धर्म को लाना चाहता हूं।"[5] अतः स्पष्ट है कि गांधी धर्म रहित तथा छल-छद्म से भरपूर राजनीति को पसंद नहीं करते थे। उन्होंने घोषणा की कि, "मेरे लिये धर्म-विहीन राजनीति कोई चीज नहीं है। नीति-शून्य राजनीति सर्वथा त्याज्य है।"[6] उन्होंने आगे कहा कि, "राजनीति तो लाखों पद-दलितों को सुन्दर जीवन-यापन करने योग्य बनाने, मानवीय गुणों का विकास करने, उन्हें स्वतन्त्रता, बन्धुत्व तथा आध्यात्मिक गइराइयों और सामाजिक समानता के बारे में प्रशिक्षित करने का निरन्तर प्रयास है। एक राजनीतिज्ञ जो इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये काम करता है, धार्मिक हुये बिना नहीं रह सकता है।"[7] उनके अनुसार, "राजनीति में प्रवेश का अर्थ है-सत्य और न्याय की प्राप्ति को दिशा में अग्रसर होना।"[8] अतः राजनीति को धर्मानुमोदित मानने में गाँधीजी का अभिप्राय यह नहीं था कि राजसत्ता धर्माधिकारियों के हाथों सौंप दी जानी चाहिये अथवा राज्य को किसी धर्म विशेष को मान्यता देनी चाहिये। उनका मानना था कि राजनीति को नैतिकता तथा मानव कल्याण का साधन बनना चाहिए।

गाँधीजी ने आदर्श सर्वोदय समाज व्यवस्था प्रस्तुत की। उससे उनका आशय है कि, "राज्य में रहने वाले प्रत्येक नागरिक को बिना किसी बाधा के अपना धर्म पालन करने का अधिकार हो । राज्य न तो किसी धर्म का संरक्षण करे और न किसी धर्म के उचित विकास में बाधक हो।"[9] लोकतन्त्र के सम्बन्ध में उन्होंने कहा कि, "सच्चा लोकतन्त्र अथवा जनता का स्वराज असत्य और हिंसा के उपायों से कभी नहीं आ सकेगा। इसका सीधा कारण यह है कि उनके प्रयोग का स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि विरोधियों को दबाकर उनका सफाया कर के सारा विरोध समाप्त कर दिया जायेगा, ऐसे वातावरण में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता नहीं पनप सकती। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तो विशुद्ध अहिंसा के राज्य में ही पूरी तरह से कार्य कर सकती है।"[10] अतः उन्होंने अनुभव किया की कुटिल राजनीति जो नैतिकता विहीन हो किसी भी दशा में उचित नहीं है। उन्होंने सत्य, अहिंसा और लोकतंत्र पर आधारित राजनीतिक दर्शन का महल खड़ा कर दिया।

गांधीजी ने जो आदर्श सर्वोदय-समाज-व्यवस्था प्रस्तुत की उसमें तो राज्य धर्म-निरपेक्ष है जिसका आशय है कि, "राज्य में रहने वाले प्रत्येक नागरिक को बिना किसी बाधा के अपना धर्म पालन करने का पूर्ण अधिकार हो-राज्य न तो किसी धर्म का संरक्षण करे और न किसी धर्म के उचित विकास में बाधक हो।"[11] अतः राज्य का अपना कोई विशेष धर्म या सम्प्रदाय नहीं होना चाहिए, किन्तु राज्य धर्म-रहित भी न हो। राज्य को नीति-धर्म के शाश्वत और सार्वभौमिक नियमों- सत्य, अहिंसा, प्रेम, सेवा आदि का पूर्ण पालन करना चाहिए। इसी प्रकार राजनीतिज्ञ सब धर्मों के प्रति समान भाव रखें और राजनीति या सार्वजनिक जीवन में नीति-धर्म के सार्वभौमिक मूल्यों पर डटे रहें। चूंकि प्रत्येक धर्म के आधारभूत सिद्धान्त एक ही

एक प्रकार के हैं, इसलिए राजनीतिज्ञों को कोई कठिनाई न होगी ।

पाश्चात्य राज-दर्शन में सम्पूर्ण मध्य युग राजनीति और धर्म के एक-दूसरे के साथ जोड़ने का युग रहा है लेकिन अजीब बात यह रही है कि मध्य युग में सन्त अगस्ताइन और सन्त एक्वीनास ने जिस तरह राजनीति एवं धर्म को जोड़ा वही आगे चलकर उसी मध्य युग में आपस के संघर्षों का कारण बना। राजा की प्रमुखता और पुरोहितवाद के बीच संघर्ष के फलस्वरूप इन दोनों के सम्बन्ध में बढ़ी कटुता आ गई। इसके फलस्वरूप परिषदीय आन्दोलन चला और असफल रहा। इसकी पराकाष्ठा उस समय हुई जब मध्य युग और आधुनिक युग के सन्धि-कालीन विचारक मैकियावली ने राजनीति और धर्म को तथा राजनीति और नैतिकता को एक-दूसरे से इतनी कठोरता से अलग किया कि कुछ पूर्वाग्रह पीडित आलोचकों ने उसे अधार्मिक एवं अनैतिक की संज्ञा दे दी। वर्तमान समय में भी राजनीति एवं धर्म के बीच सम्बन्धों का उदाहरण हमें मिलता है जैसे, वेटिकन सिटी जहाँ का पोप राजनीतिक शासक भी है और धार्मिक पुरोहित भी।[12]

महात्मा गांधी ने पाश्चात्य लोकतन्त्रीय राजनीति को इसलिए पसन्द नहीं किया क्योंकि उसमें पूंजीवादी प्रथाओं और शोषण की खुली छूट है। यह पूंजीवाद के निर्बाध विस्तार में विश्वास करती है। गाँधी की दृष्टि में यह प्रवृत्ति एक प्रकार की नाजीवादी और फॉसीवादी प्रवृत्ति है। पाश्चात्य राजनीति की गन्दी प्रवृत्तियों पर चोट करते हुए उन्होंने कहा कि, "ब्रिटेन ने अलोकतान्त्रिक तरीकों से भारत को जीता था और दक्षिण अफ्रीका तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के दक्षिणी भागों में रंग-भेद एवं जातिवाद की नीतियाँ लोकतन्त्र के ही कष्टप्रद उपहार है।"[13] अतः उन्होंने विश्वास व्यक्त किया कि केवल अहिंसा से ही सच्चे लोकतन्त्र की स्थापना हो सकती है । उन्हों के शब्दों में, "सच्चा लोकतन्त्र अथवा जनता का स्वराज्य असत्य और हिंसा के उपायों से कभी नहीं पा सकता । इसका सीधा सा कारण यह है कि उनके प्रयोग का स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि विरोधियों को दबाकर उनका सफाया करके सारा विरोध समाप्त कर दिया जाएगा। ऐसे वातावरण में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता नहीं पनप सकती सकती। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता विशुद्ध अहिंसा के राज्य में ही पूरी तरह काम कर सकती है।"[14] अतः गांधीजी ने भारत में सच्चे लोकतन्त्र की कामना की, लेकिन वे यथार्थवादी थे, वे इस कल्पना में नहीं रहे कि भविष्य का भारत सैन्य विहीन होगा और पूरी तरह अहिंसा को धारण करेगा फिर भी उनकी हार्दिक तमन्ना थी कि अधिकाधिक अहिंसा के आधार पर सच्चा लोकतन्त्र स्थापित करने की दिशा में उनका देश अग्रसर होगा ।

चीन द्वारा हस्तक्षेप के पहले तिब्बत की भी यही स्थिति थी। वहां का दलाईलामा राजनीतिक शासक भी था और धार्मिक पुरोहित भी। इसी प्रकार पाकिस्तान को एक इस्लामी राज्य बनाया गया, भले ही व्यवहार में पाकिस्तान में शासनतन्त्र का इस्लाम से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध न हो। नेपाल भी एक हिन्दू राज्य बना हुआ है। वर्तमान समय का सर्वाधिक विवादास्पद राज्य इजराइल भी यहूदियों का राज्य माना गया है। इस सन्दर्भ में यह देखकर यह अचरज होना चाहिए कि गांधीजी का भारत धर्म निरपेक्ष राज्य क्यों ? भारत एक राज्य के रूप में अर्थात एक राजनीतिक संस्था के रूप में किसी धर्म से सम्बन्धित नहीं है तो क्या इस अर्थ में भारत धर्म विरोधी है ? गांधीजी राजनीति में जिस धर्म को लाने की बात कहते हैं वह मध्ययुगीन राज-दर्शन की भांति न तो किसी चर्च से सम्बन्धित है और न किसी मन्दिर, मस्जिद या गुरुद्वारे से गांधीजी 'धर्म' शब्द की जो व्यापक व्याख्या करते हैं, वह हमारी 'धर्म' शब्द की व्याख्या से भिन्न है। हम सब कहते है कि हिन्दू धर्म, मुस्लिम धर्म, ईसाई धर्म, सिक्ख धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म आदि, तब हम गाँधीजी के ग्रंथों में सम्प्रदाय की बात करते हैं। गांधीजी ने कहा था- मेरी भी भी यही धारणा है कि राजनीति धर्म से अलग नहीं रखी जा सकती। धर्म हमारे सभी कार्य क्षेत्रों में व्याप्त रहे । यहाँ धर्म का अर्थ सम्प्रदाय नहीं है। इसका अर्थ है- सृष्टि के व्यवस्थित नैतिक शासन के प्रति आस्था । यह अदृश्य है, इसलिए यह यथार्थ नहीं, ऐसा नहीं है। यह धर्म हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म आदि से आगे निकल जाता है। यह उनको दबाता नहीं है, यह उनके बीच समन्वय प्रस्तुत करता है और उन्हें यथार्थता प्रदान करता है।[15] अतः भले ही गांधी ने राजनीति शास्त्र पर ग्रंथ नहीं लिखा वरन् राष्ट्रीय संग्राम के दौरान कदम-कदम पर जो राजनैतिक व्यवहार किया वही उनकी राजनीति का दर्शन था।

गांधीजी के राजनीतिक विचारों में लोकतन्त्र के प्रति उनकी निष्ठा सर्वत्र विद्यमान है। लोकतन्त्र में समाज के पिछड़े वर्ग को राजनीतिक अधिकारी तथा व्यवस्था द्वारा बनाए गए निर्णयों को प्रभावित करने की शक्ति से युक्त करने की माँग सतत् होती रही है गांधीजी ने भी लोकतन्त्र के सामाजिक उत्थान के पक्ष को महत्त्व दिया है। वे अभिजाततंत्रीय लोकतन्त्र तथा पंचवर्षीय मतदान की प्रणाली वाले औपचारिक लोकतन्त्र के पक्ष में नहीं हैं। उनके लोकतन्त्र में एक और समाज के दलित वर्गों द्वारा कुलीन तथा पूँजीपति वर्गों के नियन्त्रण के विरुद्ध

राजनीतिक आन्दोलन की प्रेरणा मिलती है, तो दूसरी ओर ऐसे आदर्श समाज की माँग जिसमें व्यक्ति को स्वशासन का पूर्ण अवसर प्राप्त हो सके। गांधीजी के सर्वोदयी उदारवादी लोकतन्त्र में दलविहीन राजनीति के दर्शन होते हैं। लोकतन्त्र के स्वतन्त्र विकास में राजनीतिक दलों ने अनेक बाधाएँ उत्पन्न कर दी हैं। गांधीजी सर्वोदय तथा अन्त्योदय की दृष्टि से ऐसे समतावादी समाज के उन्नायक हैं, जिसमें नेता तथा जनता एक ही धरातल पर सादगी एवं संयम से जन-सेवा का कार्य करते रहें। उन्होंने उद्योगवाद से रहित ऐसे समाज की नींव रखी है जिसमें स्वावलम्बन द्वारा व्यक्ति अपनी आजीविका तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है ।। हिंसा-विहीन राजनीति का सूत्रपात कर गांधीजी ने स्वतन्त्रता, समानता तथा परोपकारिता के आदशों को सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में सफलतापूर्वक प्रयुक्त किया है। वे राज्य के अवलम्बन से व्यक्ति को मुक्त कर जन-जीवन में ऐसी जागृति उत्पन्न करना चाहते हैं जिससे अहिंसा तथा सत्याग्रह द्वारा लोकतान्त्रिक मूल्यों की रक्षा करते हुये गांधीजी ने राजनीति से गठबन्धनों एवं जोड़तोड़ को सौदेबाजी को समाप्त कर वैयक्तिक निर्णयों को शुद्धता एवं विवेकयुक्त सत्यनिष्ठा को महत्त्व दिया है ।

निष्कर्ष

महात्मा गांधी ने राजनीति के अध्यात्मीकरण का केवल विचार ही नहीं किया अपितु व्यवहार में भी उसे कार्यान्वित करके दिखाया। उन्होंने सत्य, अहिंसा आदि धार्मिक नैतिक सिद्धान्तों का राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्र में जो सफलतापूर्वक प्रयोग किया उसे विश्वभर के राजनीतिज्ञों ने आश्चर्य और श्रद्धा के साथ स्वीकार किया। एक सन्त राजनीतिज्ञ के रूप में महात्मा गांधी ने सदैव यही चाहा कि राजनीति से विग्रह, विघटन, विद्रोह और विनाश की प्रवृत्तियों का उन्मूलन हो जाए तथा सद्भावना, सहयोग, समन्वय और संगठन तस्वों का अधिकाधिक समावेश हो ।

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ० विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन,लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, प्रकाशक, आगरा-03
2. वही
3. वही
4. हरीश कुमार, गांधी : सामाजिक, राजनैतिक परिवर्तन, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली
5. वही
6. रामलाल विवेक, महात्मा गांधी जीवन और दर्शन, पंचशील प्रकाशक, जयपुर
7. वही
8. वही
9. समीर बनर्जी, अमन नम्र, संगठन, शक्तिवर्धन और गांधी विचार, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला
10. वही
11. डॉ० प्रभुदत्त शर्मा, आधुनिक राजनीतिक विचारों का इतिहास, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर
12. प्रताप सिंह, गांधी जी का दर्शन, रिसर्च पब्लिकेशन, नई दिल्ली,
13. डॉ० योगेंद्र कुमार शर्मा, भारतीय राजनीतिक विचारक, कनिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली
14. वही
15. प्रताप सिंह, गांधी जी का दर्शन, रिसर्च पब्लिकेशन, नई दिल्ली